शतपदी प्रश्नोत्तर पद्धति में प्रतिपादित जैनाचार

रूपेन्द्र कुमार पगारिया

शतपदी प्रश्नोत्तर पद्धति जैन श्वेताम्बर अंचलगच्छ की समाचारी एवं उनके द्वारा मान्य सिद्धान्तों को आगमानुसार सिद्ध करनेवाला प्राचीन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का रचना समय वि० सं० १२९४ है। यह ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित है। इसकी ताड़पत्र पर लिखी हुई चार प्रतियाँ एवं कागज पर लिखी गई कई प्रतियाँ भण्डारों में मिलती हैं। पाटण जैन ज्ञान भंडार की दो ताडपत्रीय प्रतियों में एक संघवी पाडे की ताड़पत्रीय प्रति का लेखन संवत् १३०६ है। अन्य प्रतियों में लेखन समय नहीं है। मैंने इस ग्रन्थ का संशोधन, सम्पादन इसी प्रति से किया है।

इस ग्रन्थ की खास विशेषता यह है कि इसके तीन संस्करण हुए हैं। प्रथम संस्करण बृहत् शतपदिका के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के कर्ता आ० धर्मघोषसूरि थे। इसका रचना काल वि० सं० १२६३ है। इसकी भाषा प्राकृत थी। वर्तमान में यह संस्करण अनुपलब्ध है।

इसका दूसरा संस्करण आ० महेन्द्रसिंहसूरि ने किया। आ० महेन्द्रसिंहसूरि आ० धर्मघोषसूरि के पट्टधर थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्य के द्वारा बनाया हुआ यह ग्रन्थ देखा। उन्हें लगा कि अंचलगच्छ की समाचारी एवं मान्य सिद्धान्तों को शास्त्रप्रमाणों से सिद्ध करनेवाला तथा अन्य गच्छों की समाचारी को तुलनात्मक ढंग से प्रस्तुत करनेवाला यह अनुपम ग्रन्थ है। किन्तु इसकी भाषा प्राकृत है एवं विषय विवेचन भी अति गम्भीर है अतः इसे भाव और भाषा की दृष्टि से सरल बनाना चाहिए। यही सोचकर उन्होंने आ० धर्मघोषसूरि कृत शतपदी को नूतन शैली में तथा सरल संस्कृत भाषा में तैयार किया है। उन्होंने धर्मघोष कृत शतपदी के सभी प्रश्नों को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया और जो प्रश्न और उत्तर विस्तृत थे उन्हें संक्षिप्त किये और जो संक्षिप्त किन्तु उपयोगी अंश थे, उसका विस्तार कर ५२०० श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ की प्रश्नोत्तर पद्धति से तैयार किया। आ० महेन्द्रसिंहसूरि अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान् थे। इन्हें कई आगम कंठस्थ थे। वे अपने शिष्यों को बिना पुस्तक की सहायता से ही पढ़ाते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में कई ग्रन्थों की रचना की थी। गुरुगुणषट्त्रिंशिका, अष्टोत्तरितीर्थमाला, स्वोपज्ञवृत्तिविचारसप्ततिका, चतुःशरण तथा आतुरप्रत्याख्यानावचूरि, शतपदी, मनस्थिरीकरणप्रकरण आदि ग्रन्थ उनकी ज्ञान गरिमा को प्रकट कर रहे हैं।

शतपदिका का तीसरा संस्करण लघुशतपदिका के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ५२ प्रश्न बृहत् शतपदी से लिये हैं। अपनी ओर से सात नये प्रश्नों का समावेश कर १५७० श्लोक प्रमाण में वि० सं० १४५० में महेन्द्रप्रभसूरि के पट्टधर श्री मेरुतुङ्गसूरि ने लघुशतपदिका के नाम से इस की रचना की है। इसमें सत्रहप्रकारीपूजाविचार, पुस्तकपूजाविचार, आरती-मंगलदीपविचार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालोद्घाटन-विचार, साधु-प्रतिक्रमणविचार, इस प्रकार सात प्रश्नों का विशेष रूप से विवेचन किया है। साथ ही इसमें कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की सूची भी दी है, जो बड़ी महत्त्व की हैं।

शतपदी का सार और परिचय

शतपदी ग्रन्थ में ११७ प्रश्नों के शास्त्रीय प्रमाणों के साथ उत्तर दिये गये हैं। इन्होंने आगम, टीका, भाष्य, चूर्णि, प्रकरण आदि सौ ग्रन्थों से उद्धरण लेकर अपनी बात को प्रमाणित किया है। उनके समय में उपलब्ध किन्तु वर्तमान में अनुपलब्ध ऐसे कई ग्रन्थों के उद्धरण इस ग्रन्थ में मिलते हैं। साथ ही कई ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध भी हैं, किन्तु अप्रकाशित स्थिति में ग्रन्थ भण्डारों की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे हैं। साथ ही इस ग्रन्थ में संवत् के साथ कई ऐतिहासिक घटनाओं की भी सूची दी गई है। इतना ही नहीं बारहवीं सदी में प्रचलित जैन सम्प्रदायों की विभिन्न ५७ मान्यताओं का भी इसमें उल्लेख किया गया है, जिससे हमें उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का पता लगता है। शतपदीकार ने मुख्यतः अपने ग्रन्थ में जिन-प्रतिमा, जिनपूजा पर्व, तिथि, श्रावक एवं साधुओं के आचार एवं उनके अपवाद तथा उत्सर्ग-मार्गकी विस्तृत रूप से प्रश्नोत्तर पद्धति में चर्चा की है। इनके द्वारा सूचित समाचारी को पूर्णिमागच्छ, सार्धपूर्णिमागच्छ, आगमगच्छ, नाडोलगच्छ वल्लभीगच्छ के आचार्यों ने भी मान्यता दी थी। शतपदीकार ने जिन विषयों की विस्तृत रूप से चर्चा की है उनका संक्षिप्त सार यह है—

प्रतिमा विषयक विचार

१. प्रतिमा सपरिकर तथा अपरिकर दोनों वंदनीय हैं।
२. प्रतिमा में वस्त्रांचल करना आवश्यक है।
३. साधुओं को प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए।
४. दीपपूजा, फलपूजा तथा बीजपूजा नहीं करनी चाहिए।
५. बलि नहीं चढ़ाना चाहिए।
६. तण्डूल (चावल) से तथा पत्र से भी पूजा हो सकती है।
७. पार्श्वनाथ की मूर्ति में सात फणे और सुपार्श्वनाथ की मूर्ति में पाँच फणे ही करानी चाहिए।
८. सामान्यतः जिन पूजा त्रिसंध्या में ही करनी चाहिए। कारणवश पूजा आगे-पीछे भी की जा सकती है।
९. देवों की तरह ही श्रावक को भी चैत्य वन्दन करना चाहिए।
१०. रात्रि में पूजा नहीं करनी चाहिए।
११ निश्राकृत चैत्य तथा अनिश्राकृतचैत्य दोनों ही वन्दनीय हैं।

जैन परम्परा में एक पक्ष ऐसा भी था जो सपरिकर प्रतिमा को ही पूजनीय मानता था। परिकर रहित प्रतिमा को पूजनीय नहीं मानता था। शतपदीकार ने शास्त्रीय प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि प्रतिमा चाहे सपरिकर हो या अपरिकर, दोनों ही वन्दनीय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर जैन मान्यता के अनुसार वस्त्ररहित प्रतिमा ही पूजनीय है। प्रतिमा पर वस्त्र या अलंकार नहीं होना चाहिए।

शतपदीकार का कहना है कि वस्त्र एवं अलंकारों से युक्त प्रतिमा भव्य, दिव्य एवं आकर्षक लगती है। ऐसी भव्य एवं समस्त अलंकारों से विभूषित प्रतिमा के दर्शन से व्यक्ति के मन में अधिक प्रसन्नता उत्पन्न होती है। व्यक्ति जितनी अधिक प्रसन्नता का अनुभव करता है उतनी ही वह कर्म की निर्जरा अधिक करता है।

जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा श्रावक को ही करनी चाहिए साधुओं को नहीं। उस समय कई साधु तथा आचार्य स्वयं अपने हाथों से मूर्ति की प्रतिष्ठा-विधि करते थे और करवाते थे। शतपदीकार ने शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध किया है कि प्रतिष्ठा में सचित्त जल, अग्नि और वनस्पति का उपयोग होता है। ये कार्य साधु समाचारी के विरुद्ध हैं अतः साधु को ऐसी सावद्य प्रवृत्ति में नहीं पड़ना चाहिए।

साथ ही फल से, दीप से या बीज से जिन पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि फल से, दीपक जलाने से तथा बीज के सजीव होने से इसमें अनेक जीवों की हिंसा होती है। अतः इन सजीव पदार्थों से जिन पूजा नहीं करनी चाहिए।

रात्रि में जिन पूजा नहीं करनी चाहिए और पूजा के निमित्त दीप भी नहीं जलाना चाहिए और मंगल आरती भी नहीं उतारनी चाहिए। क्योंकि दीपक में अनेक त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती है।

चैत्यवन्दन की विविध विधियाँ जैन समाज में प्रचलित थीं और हैं। उनकी विसंगतता को हटाने के लिए और उनमें एकरूपता लाने के लिए उन्होंने कहा—राजप्रश्नीयसूत्र में सूर्याभदेव ने तथा जीवाभिगमसूत्र में विजयदेव ने जिस प्रकार जिन प्रतिमा के सामने चैत्यवन्दन किया वैसा ही चैत्यवन्दन श्रावक को करना चाहिए। अन्य प्रकार से नहीं।

कुछ व्यक्ति ऐसा मानते थे कि श्रावकको धर्म क्रिया करते समय मुखवस्त्रिका, रजोहरण तथा स्थापनाचार्य अवश्य रखना चाहिए। शतपदीकार ने कहा—धार्मिक क्रिया सामायिक आदि करते समय श्रावक को मुखवस्त्रिका, रजोहरण या स्थापनाचार्य अनावश्यक है। मुखवस्त्रिका तथा रजोहरण का कार्य वह उत्तरीयवस्त्र से या वस्त्र के अंचल से भी कर सकता है। श्रावक के लिए स्थापनाचार्य का विधान आगम में कहीं भी नहीं आता अतः इसका रखना निरर्थक है।

श्रावक को त्रिविध रूप से साधु की तरह ही मिथ्यात्व का परित्याग करना चाहिए। श्राद्ध, देव-देवी पूजन, बलि चढ़ाना आदि सब मिथ्यात्व है अतः इनका श्रावक को त्याग करना चाहिए।

उपधान और मालारोपण उस समय भी विशेष रूप से प्रचलित था और आज भी है। उन्होंने इस विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा – उपधानतप और मालारोपण शास्त्र विरुद्ध है, अतः श्रावक को यह नहीं करना चाहिए तथा साधु को भी इस शास्त्रविरुद्ध विधि का विधान नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक को अष्टमी-पूर्णिमा जैसी तिथियों में ही पौषध करना चाहिए, अन्य दिनों में नहीं।

सामायिक का समय केवल दो ही घड़ी है। दो घड़ी से अधिक की सामायिक नहीं होती। साथ ही श्रावक को प्रातः तथा संध्या के समय ही सामायिक करनी चाहिए। दो से अधिक बार श्रावक को सामायिक नहीं करनी चाहिए।

कुछ लोग श्रावक को सूत्र पढ़ने या पढ़ाने का निषेध करते थे। शतपदीकार ने इस विषय में थोड़ी छूट देते हुए कहा – श्रावक आवश्यक निर्युक्ति, चूर्णि तथा सूत्रों के अलापक (ग्रथांश) पढ़ सकता है। साधु भी श्रावक को मर्यादित एवं उनके उपयोगी शास्त्र पढ़ा सकता है।

आवश्यक चूर्णि में बतायी गई विधि के अनुसार ही श्रावक को षडावश्यक करना चाहिए।

साधु के उपाश्रय में स्त्रियों को खड़े खड़े ही वन्दन करना चाहिए। साधु के उपाश्रय में स्त्रियों को बैठना या घुटने टेक कर वन्दन करना शास्त्र विरुद्ध है।

मूर्ति को वन्दन एक खमासमन से भी हो सकता है।

श्रावक द्वादशावर्तरूप वन्दन सामान्य साधु को भी कर सकता है।

प्रायश्चित्त का विधान साधु के लिए ही है यह कथन उचित नहीं। श्रावक भी साधु की तरह अपने पापों का प्रायश्चित्त कर सकता है।

पर्वतिथिविषयक विचार

तीर्थंकरों के जन्म, च्यवन, दीक्षा, ज्ञान एवं निर्वाणकल्याणक नहीं मनाने चाहिए। जो जिनकल्याणक मनाते हैं वे शास्त्र विरुद्ध कार्य करते हैं।

आसोज और चैत्र मास के अष्टाह्निक पर्व न मनाये जायें।

सांवत्सरिक प्रतिक्रमण आषाढ़ी पूर्णिमा से ५० वें दिन ही करना चाहिए।

चातुर्मास विहार पूर्णिमा के दिन ही करना चाहिए तथा पूर्णिमा को ही पक्खी माननी चाहिए। चतुर्दशी को नहीं।

लौकिक पंचांग नहीं मानना चाहिए। क्योंकि लौकिक पंचांग में जैन सिद्धान्तों के विरुद्ध अनेक बातें आती हैं।

अधिक मास पौष या आषाढ़ को ही मानना चाहिए। अधिक मास में 'वीसापजूषण' अर्थात् भाद्रपदसुद ५ के दिन ही पर्यूषण पर्व मनाया जाय।

साधु के आचार विषयक–अपवाद

साधु को बाँस का ही दण्डा रखना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है काष्ठ का भी रख सकते हैं।

साधु को पर्व के दिनों में ही चैत्यवन्दन करना चाहिए। प्रतिदिन वन्दन के लिए चैत्य में जाने की आवश्यकता नहीं है।

साधु को द्रव्य स्तव करने या करवाने का शास्त्र में निषेध है (जिन भगवान् के सामने नाटक, गीत, नृत्य आदि करबाना द्रव्यस्तव है) अर्थात् द्रव्यस्तव साधु को त्रिविध त्रिविध रूप से नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु को चैत्यवन्दन तीन श्लोकवाली स्तुति से ही करना चाहिए। क्योंकि साधु मलमलीन एवं अस्नात होते हैं अतः अल्प स्तुति करके उसे तुरन्त चैत्य से निकल जाना चाहिए। साधु को चैत्यवन्दन में कृत्रिम स्तुतियाँ अर्थात् आधुनिक साधुओं के द्वारा बनाई गई स्तुतियाँ नहीं बोलनी चाहिए।

दो से कम साधुओं को एवं तीन से कम साध्वियों को नहीं विचरना चाहिए।

चातुर्मास के पश्चात् शेष काल में भी साधु साध्वी पीढ़, फलक आदि का उपयोग कर सकते हैं।

साधु को अपने उपाश्रयों में गीत, नृत्य, वाद्यवादन आदि नहीं करवाना चाहिए।

साधु तथा साध्वी को द्वार युक्त वस्ति में ही रहना चाहिए।

कुछ आचार्य दीक्षा लेने के बाद साध्वी का प्रथम लोच स्वयं अपने हाथों से करते थे। शतपदीकार ने कहा साध्वी का लोच साध्वी को ही करना चाहिए साधुओं को नहीं; जो ऐसा करते हैं वे शास्त्र विरुद्ध करते हैं।

साधु को हाथ-पैर आदि नहीं धोने चाहिए क्योंकि शास्त्र में साधु को हाथ पैर धोना मना है।

भिक्षा लाने के समय में ही साधु को आहार करना चाहिए। अन्य समय में नहीं। शतपदीकार ने साधुओं के आचार में निम्न अपवाद भी सूचित किये हैं।

१. साधु पुस्तक, लेखनी, स्याही तथा उनकी सुरक्षा के उपकरण रख सकते हैं।
२. पात्र में लगाने के लिए यदि खंजण लेप नहीं मिलता है तो अन्य लेप भी लगा सकते हैं।
३. साधु कारणवश स्थिर (भीत, स्तंभ) अथवा चल (पीठ, फलक) का आधार लेकर बैठ सकता है।
४. यदि साधु को ऋषभकल्पनावाली वसति नहीं मिलती है तो वह अन्य वसति में भी रह सकता हैं।
५. बाहर वर्षा वरस रही हो तो भी साधु उपाश्रय में आहार कर सकता है।
६. सूत्रार्थ पौरुषी में भी साधु धर्मदेशना दे सकता है।
७. कारणवश साधु सूत्रपौरुषी में अर्थ और अर्थपौरुषी में सूत्र पढ़ सकता है।
८. साधु मात्रक, वासत्राण घड़ा, सूई, कैंची, कर्णशोधिका, पादलेखनिका आदि आवश्यक उपकरण अपने पास रख सकता है।
९. कारणवश साधु मासकल्प को कम या अधिक कर सकता है।
१०. नीव्रोदक से भी साधु वस्त्र आदि धो सकता है। (नीव्रोदक छत से गिरा हुआ वर्षा का पानी।)
११. कारणवश साधु अपने निवास का द्वार बन्द कर सकता है और खोल भी सकता है।
१२. कारणवश साधु पासत्थे (शिथिलाचारी) को वन्दन कर सकता है, उनसे बातचीत कर सकता है और उनकी वसति में निवास भी कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. तुम्बे का कण्ठ सीना या उसमें डोरा बाँधना शास्त्र विरुद्ध नहीं है।
१४. चूहे आदि से बचने के लिए साधु अपने वस्त्र आदि खूंटी पर भी टांग सकता है।
१५. कारणवश साधु अपने पास औषध अ दि भी रख सकता है।
१६. कारणवश साधु लेख या संदेश भेज सकता है।
१७. संवत्सरी तक साधु को अवश्य लोच कर लेना चाहिए।
१८. प्रसंगवश साधु मधुर, स्निग्ध और पौष्टिक आहार भी कर सकता है।
१९. साधु को नैऋत्य दिशा में ही स्थंडिल जाना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। अनुकूलता न हो तो अन्य दिशा में भी स्थंडिल जा सकता है।
२०. साधुओं को एकांगिक रजोहरण नहीं मिले तो अनेकाङ्गिक भी ग्रहण कर सकता है।
२१. साधु तुंबे के पात्र के सिवाय अन्य आलेपित पात्र में भी भोजन कर सकता है।
२२. साधु भिक्षा के लिए गाँठें लगाकर झोली बना सकता है।
२३. साधु दशायुक्त वस्त्र ले सकता है किन्तु उसका उपयोग नहीं कर सकता।
२४. सामान्यत: साधु, साध्वी को नहीं पढ़ा सकता, किन्तु कारणवश उन्हें पढ़ा सकता है और आगम की वाचना भी दे सकता है।
२५. कारणवश साधु प्रावरण (कम्बल या दुशाला) भी ओढ़ सकता है।
२६. साधुओं को जैनकुलों में ही भिक्षा लेनी चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। साधु जैनेतर कुलों में भी भिक्षा ले सकता है।
२७. बीमारी आदि कारण से साधु फलादि भी ग्रहण कर सकता है।
२८. साधु को तृतीय प्रहर में ही भिक्षा के लिए जाना चाहिए, ऐसा एकान्त नियम नहीं है अन्य प्रहर में भी भिक्षा के लिए जा सकता है।
२९. साध्वी जिस क्षेत्र में निवास करती हो उस क्षेत्र में साधु को नहीं रहना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है।
३०. घर में एक से अधिक संघाडे को नहीं जाना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है।
३१. साधु को संसृष्ट हाथ से या संसृष्ट कडछी आदि से ही आहार लेना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। असंसृष्ट हाथ या कडछी से भी साधु आहार ग्रहण कर सकता है।
३२. समर्थ होने पर भी यदि साधु या श्रावक पर्व दिनों में तप नहीं करता है तो वह प्रायश्चित्त का अधिकारी होता है। यह नियम बाल, वृद्ध, ग्लान आदि के लिए लागू नहीं होता।
३३. नमोत्थुणं में 'दिवोत्ताणं सरणगईपइट्टा, नमो जिनाणं जीय भयाणं तथा 'जे अइयासिद्धा' ये जो पाठ हैं, उन्हें नहीं बोलना चाहिए।
३४. नमोक्कार मंत्र में 'हवइ मंगलं' के स्थल में 'होइ मंगलं' ही बोलना चाहिए। क्योंकि 'होई मंगल' यही पाठ ही प्राचीन और शुद्ध है।
३५. साधु को एक ही बार भोजन करना चाहिए ऐसा एकान्त नियम नहीं है। कारण-वश वह एक से अधिक बार भी आहार कर सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त इन्होंने निम्न बातों पर भी अपने मंतव्य लिखे हैं—

१. जिनाज्ञा की प्रमाणता
२. आचरणा वैचित्र्य विचार
३ अशठाचरण के लक्षण तथा दृष्टान्त
४. हरिभद्रसूरि तथा अभयदेवसूरि की आचरणा विषयक अपने विचार
५. मुनिचन्द्रसूरि तथा देवसूरि की आचरणा विषयक अपने मंतव्य
६. उपदेशमाला विषयक अपने विचार
७. खरतरगच्छमत मीमांसा
८. दिगम्बरमत समीक्षा
९. अंचलगच्छ तथा बृहद्गच्छ की उत्पत्ति का इतिहास ।

इन सब बातों का आ० महेन्द्रसिंहसूरि ने तुलनात्मक एवं तात्त्विक रूप से विवेचन किया है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य एवं टीकाओं का तथा प्रकरण ग्रन्थों का गहराई के साथ अध्ययन कर अपनी मान्यताओं को शास्त्र प्रमाणों से सिद्ध किया है। शतपदी में करीब सौ ग्रन्थों के नाम और उनके उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

इन्होंने जिन ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं उनमें से कुछ ग्रन्थ शतपदीकार के समय मौजूद थे किन्तु वर्तमान में अनुपलब्ध हैं जैसे—

१. प्रतिष्ठाकल्प (हरिभद्रसूरि)
२. प्रतिष्ठाकल्प (समुद्राचार्य)
३. सम्यक्त्वकुलक (वर्द्धमानाचार्य)
४. आवश्यकमीमांसा (चिरन्तनाचार्य)
५. दर्शनसत्तरि (वर्द्धमानाचार्य)
६. आवश्यकटिप्पणक
७. योगसंग्रह
८. योगसंग्रहचूर्णि
९. चिरन्तन कल्पवल्ली (४४००० हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ)
१०. यापनीयतंत्र
११. छेदसूत्र की हुण्डियाँ आदि
१२. जीवाभिगमसूत्रचूर्णि

उपलब्ध किन्तु अप्रकाशित ग्रन्थ ये हैं—

१. व्यवहारसूत्रचूर्णि
२. पंचकल्पचूर्णि
३. महानिशीथसूत्र (जर्मनी में प्रकाशित)
४. पाक्षिकचूर्णि
५. कल्पसामान्यचूर्णि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कल्पविशेषचूर्णि
७. पञ्चाशकटीका आदि

हमें इन अनुपलब्ध ग्रन्थों का पता लगाना चाहिए तथा उपलब्ध किन्तु अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित करना चाहिए।

आचार्य महेन्द्रसिंह सूरि का समय वि० सं० १२३७-१३०९ तक का है। इनके समय में मूर्तिपूजक समाज ८४ गच्छों में विभक्त था। ८४ गच्छों की विभिन्न मान्यताएँ उनके आचार, विचार उस समय के जैन समाज में प्रचलित थे। आचार एवं विचारभेद के कारण एक गच्छ के आचार्य दूसरे गच्छ के आचार्य के साथ वाद-विवाद करता था। एक आचार्य दूसरे आचार्य के साथ वाक्युद्ध में उतरता था। इस धार्मिक युद्ध से आचार्य महेन्द्रसिंहसूरि बड़े व्यथित थे। वे कहते हैं—हमारे संप्रदायों में सैकड़ों आचार एवं विचारों का वैचित्र्य दृष्टिगोचर होता है। सभी अपने-अपने विचारों को सत्य बताते हैं तो हमें किन विचारों को मानना चाहिए मेरी दृष्टि से जो विचार शास्त्रसम्मत हों उन्हें ही मानना चाहिए। इसी से ही समाज में शांति स्थापित हो सकती है।

आ० महेन्द्रसिंह सूरि ने उस समय की ५० विभिन्न प्रचलित मान्यताएँ अपने ग्रन्थ में दी हैं। वे ये हैं—

१. कोई चैत्य में निवास करता है तो दूसरा साधु चैत्य निवास को मुनि के कल्प के विरुद्ध मानकर श्रावकों के लिए बनाई गई वसति में ही निवास करता है।
२. कोई नमोक्कार मंत्र में "हवइ मंगलं" बोलता है तो दूसरा "होइ मंगलं"।
३ कोई चैत्यवन्दन में "नमः श्री वर्द्धमानाय, नमः तीर्थेभ्यः, नमः प्रवचनाय, नमः सिद्धेभ्यः" ऐसे चार पद बोलता है, कोई एक ही पद बोलता है, तो कोई एक भी पद नहीं बोलता।
४. कोई नमस्कार मंत्र का उपधान मानते हैं, तो कई उपधान को शास्त्रविरुद्ध कहकर उसका निषेध करते हैं।
५. एक अपने हाथ से मालारोपण करते हैं। कोई दूसरों के हाथों से मालारोपण करवाते हैं। तीसरा पक्ष मालारोपण को ही शास्त्र के प्रतिकूल मानकर उसका निषेध करता है।
६. एक पक्ष प्रतिक्रमण में "आयरिय उवज्झाए" आदि गाथाएँ बोलता है। दूसरा पक्ष नहीं बोलता।
७. एक पक्ष साध्वी का प्रथम लोच गुरु द्वारा ही होना चाहिए—ऐसा मानता है, तो दूसरा पक्ष साध्वी का लोच साध्वी को ही करना चाहिए ऐसा मानता है।
८. एक पक्ष जिन स्नान पञ्चामृत से मानता है दूसरा पक्ष गन्धोदक से।
९. एक पक्ष श्रावक का "शिखाबन्ध" मानता है तो दूसरा पक्ष कलशाभिमंत्र करना मानता है। तीसरा पक्ष दोनों बातों को नहीं मानता।
१०. एक पक्ष जिन प्रतिमा को रथ में रखकर छत्र, चँवर के साथ गाँव में घुमाता है, दिग्पालों की पूजा करता है। बलि फेंकता है। तो दूसरा पक्ष इन सब बातों का निषेध करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११ एक पक्ष प्रत्येक प्रत्याख्यान में "वोसिरामि" ऐसा बोलता है। दूसरा पक्ष प्रत्याख्यान के अन्त में 'वोसिरामि' ऐसा शब्द बोलता है।

१२ एक पक्ष प्रत्याख्यान में "विगईओ पच्चक्खामि" ऐसा पाठ बोलता है तो दूसरा पक्ष "विगईओ से सियाओ पच्चक्खामि" ऐसा पाठ बोलता है।

१३. एक पक्ष एक परिकर में एक ही जिन बिम्ब बनाना मानता है तो दूसरा पक्ष एक ही परिकर में २४ तीर्थङ्कर, त्रिबिम्ब, पंचतीर्थी, सत्तरिसयपट्ट (१७० तीर्थङ्कर) बनाने का विधान करता है।

१४. एक पक्ष एक गूढमण्डप तथा तीन द्वार बनाने का विधान करता है। दूसरा पक्ष एक ही द्वार का विधान करता है।

१५. एक पक्ष एक मन्दिर में एक ही प्रतिमा की स्थापना करता है, तो दूसरा पक्ष अनेक प्रतिमा की स्थापना करता है।

१६. कुछ लोग सामायिक ग्रहण करने के पूर्व श्रावक को इर्यापथिक करने का विधान करते हैं, तो दूसरे लोग सामायिक ग्रहण करने के बाद इर्यापथिक कहते हैं ।

१७. एक पक्ष मन्दिर के लिए कुआँ, बगीचा, तालाब, ग्राम, गोकुल तथा खेत आदि देने या बनवाने में पाप नहीं मानता है तो दूसरा पक्ष इन प्रवृत्तियों को सावद्य प्रवृत्तियाँ कह कर उनका निषेध करता है।

१८. एक पक्ष जिनपूजा के समय श्रावक को पगड़ी रखने की बात करता है, तो दूसरा पक्ष उत्तरीयवस्त्र का विधान करता है।

१९. एक पक्ष श्रावक को तथा सौभाग्यवती स्त्री को ही वन्दन प्रतिक्रमण करने का विधान करता है, तो दूसरा पक्ष ऐसा नहीं मानता।

२०. एक पक्ष आरती को निर्माल्य मानकर एक ही आरती से अनेक जिन बिम्बों की आरती उतारता है, 'तो दूसरा पक्ष प्रत्येक बिम्ब के लिए अलग-अलग आरती उतारता है।

२१. एक पक्ष उत्तरशाटिका कोई छह हाथ की, कोई पाँच हाथ की, तो कोई चार हाथ की ग्रहण करता है। दूसरा पक्ष ऐसा नहीं मानता।

२२. एक पक्ष खुले मुख से बात करने में पाप नहीं मानता, तो दूसरा पक्ष खुले मुख से बोलने में पाप मानता है।

२३. एक पक्ष एकपटी मुखवस्त्रिका का विधान करता है, तो दूसरा पक्ष दोपटी मुख-वस्त्रिका को मानता है।

२४. एक व्यक्ति स्नात्रकाल में पर्व तिथि को ग्रहण करता है, दूसरा सूर्योदय से पर्वतिथि को ग्रहण करता है। तीसरा पक्ष सायंकाल में प्रतिक्रमण के समय तिथिग्रहण करता है।

२५. एक पक्ष चतुर्दशी का क्षय होने पर त्रयोदशी को प्रतिक्रमण करता है, तो दूसरा पक्ष पूर्णिमा को प्रतिक्रमण करता है।

२६. एक पक्ष एक पटलक रखता है, तो दूसरा बिलकुल नहीं रखता।

२७. एक पक्ष श्रावण या भाद्रपद का अधिक मास होने पर ४९ वें दिन पर्यूषण पर्व मानता है तो दूसरा पक्ष ६९ वें दिन पर्यूषण पर्व मानता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. एक पक्ष एक गच्छ में एक आचार्य तथा एक ही महत्तरा का होना मानता है, तो दूसरा पक्ष अपनी सुविधा के अनुसार कई आचार्य एवं कई महत्तराओं की स्थापना करता है। पूर्णिमा गच्छवाले एक गच्छ में अनेक आचार्य मानते हैं, किन्तु एक ही महत्तरा होने का विधान करते हैं।

२९. एक पक्ष अष्टमी, चौदस, पूर्णिमा तथा अमावास्या को ही शास्त्रोक्त पर्व तिथि मानता है तो दूसरा पक्ष द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चर्तुर्दशी ऐसी पाँच तिथि मानता है।

३०. एक पक्ष, भट्टारिका, क्षेत्रपाल और गोत्रदेव की पूजा तथा श्राद्ध आदि को मान्य रखता है, तो दूसरा पक्ष इसे मिथ्यात्व कह कर, इसका निषेध करता है।

३१. एक पक्ष पुराने वस्त्रों को ही ग्रहण करता है तो दूसरा पक्ष साधु को नूतन वस्त्र ही ग्रहण करने का विधान करता है।

३२. एक पक्ष ग्रहण के समय स्नात्र पूजा पढ़ता है, तो दूसरा पक्ष ग्रहण के समय पूजा आदि का निषेध करता है।

३३. एक पक्ष के साधु वर्ष में दो बार केशलुंचन करते हैं, तो कुछ साधु वर्ष में तीन बार लोच का विधान करते हैं।

३४. एक पक्षवाले साधु श्रावकों के द्वारा उठाई जाती हुई पालखी में बैठते हैं, तो दूसरा पक्ष उसे साधु के लिए अकल्पनीय मानता है।

३५. एक पक्ष चन्दन से चरणपूजा करवाता है, तो दूसरा पक्ष उसका निषेध करता है।

३६. एक पक्ष प्रणिधान दंडक की दो गाथा ही बोलता है, तो दूसरा चार गाथा बोलता है।

३७. एक शेषकाल में भी पीढ फलक आदि ग्रहण करता है, तो दूसरा उसका निषेध करता है।

३८. एक साधु रजोहरण की दशिकाओं को लम्बी तथा पतली बनाता है, तो दूसरा पक्ष ऐसा नहीं करता।

३९. एक पक्ष रजोहरण को एक ही बन्ध से बांधता है. तो दूसरा पक्ष दो बन्धसे बांधता है।

४०. एक पक्ष महानिशीथ सूत्र को प्रमाणभूत मानता है तो दूसरा पक्ष महानिशीथ को प्रमाणभूत नहीं मानता।

४१. एक पक्ष मस्तक पर कपूर डालता है, तो दूसरा उसका निषेध करता है।

४२. एक पक्ष नेपाल की कम्बल को ग्रहण करता है, तो दूसरा पक्ष नेपाल की कम्बल को ग्रहण करना अकल्पनीय मानता है।

४३. एक पक्ष में आचार्य स्वयं जिन बिम्ब की पूजा करता है, तो दूसरा पक्ष साधुओं को पूजा करने का निषेध करता है।

४४. एक पक्ष अक्षसमवसरण में पूजा करता है दूसरा पक्ष ऐसा नहीं मानता।

४५. एक गुरुपरम्परागत मंत्रपटकी पूजा करता है, तो दूसरा पक्ष ऐसा नहीं करता।

४६. श्रावक के पुत्र के नामकरण, विवाह आदि के अवसर पर एक पक्षवाले वासक्षेप करते हैं. तो दूसरा पक्ष उसका निषेध करते हैं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

४७. एक पक्षवाले गद्दी पर बैठते हैं, तो दूसरा पक्ष गद्दी पर बैठना शास्त्र विरुद्ध बताते हैं।

४८. एक पक्ष ऐसा मानता है कि वेदिका में (नन्दि में) रखा हुआ सभी द्रव्य गुरु का हो जाता है, दूसरा पक्ष ऐसा नहीं मानता।

४९. एक पक्ष श्रावक पर अक्षत सहित वासक्षेप करता है, तो दूसरा पक्ष अक्षतरहित वासक्षेप करता है।

५०. एक पक्ष दिन में ही बलि चढ़ाते हैं, तो दूसरा पक्ष रात्रि में भी बलि चढ़ाता है।

एक पक्ष संघ के साथ चलकर तीर्थयात्रा करते हैं, तो दूसरे पक्षवाले स्वतंत्र रूप से चलकर तीर्थ यात्रा करते हैं।

एक गच्छ में आर्याएं श्रावक के हाथ से ही वस्त्र ग्रहण करती हैं, तो दूसरे पक्ष की आर्याएं साधुओं से भी वस्त्र ग्रहण करती हैं।

एक पक्षवाले हरिभद्रसूरि द्वारा रचित लग्न शुद्धि के आधार से रात्रि में भी दीक्षा, प्रतिष्ठा आदि करते हैं, तो दूसरे रात्रि में दीक्षा, प्रतिष्ठा आदि का निषेध करते हैं।

एक पक्षवाले अकेली साध्वी का तथा अकेले साधु का विचरना शास्त्र विरुद्ध नहीं मानते हैं, तो दूसरा पक्ष अकेली साध्वी का तथा अकेले साधु का विचरना शास्त्र विरुद्ध मानते हैं।

इस प्रकार की अनेक आचरणाएँ उस समय जैन समाज में प्रचलित थीं।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में कई ऐतिहासिक घटनाएँ भी मिलती हैं। जैसे गिरनार पर्वत पर वस्त्ररहित प्रतिमाएँ हैं जिन्हें श्वेताम्बर भी मानते हैं। प्राचीन समय में वायड में मुनिसुव्रत भगवान् की तथा जीवन्त स्वामी की प्रतिमाएँ वस्त्रयुक्त थीं। मुनिचन्द्रसूरि साधु के लिए बनाये गये उपाश्रय में नहीं रहते थे। वि० सं० १२२९ में कुमारपाल राजा ने तीर्थयात्रा संघ निकाला था। हेमचन्द्राचार्य भी उस संघ में सम्मिलित थे। उस समय हेमचन्द्राचार्य ने तथा वायड मंत्री ने देवसूरि से कुमारपाल राजा की तीर्थयात्रा संघ में सम्मिलित होने की प्रार्थना की थी। देवसूरि ने उनसे कहा—महानिशीथ सूत्र में साधु के लिए तीर्थयात्रा संघ के साथ तीर्थयात्रा करने का निषेध किया गया है। अतः हम आपके तीर्थयात्रासंघ में नहीं आ सकते।

इस ग्रन्थ में बृहद् गच्छ (वडगच्छ) का इतिहास भी दिया गया है। वह इस प्रकार है–

नानक गाँव में नानकगच्छ में सर्वदेवसूरि हुए। इनके गुरु चैत्यवासी थे। सर्वदेवसूरि बाल्यावस्था में बड़े बुद्धिमान् थे। इनके गुरु ने इन्हें संस्कृत, प्राकृत, न्याय आदि ग्रन्थों के साथ-साथ आगम ग्रन्थों का भी अध्ययन करवाया था। इनकी प्रतिभा को देखकर गुरुजी ने 'आवि' और 'हातली' नामक गाँव के बीच वट वृक्ष के नीचे राख का वासक्षेप डालकर इन्हें आचार्यपद पर अधिष्ठित किया। इनका गच्छ "वडगच्छ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस गच्छ में कई प्रतिभा सम्पन्न आचार्य थे, अतः यह गच्छ बृहद् गच्छ कहलाया।

इन्हीं सर्वदेवसूरि की परम्परा में यशोदेव नामके उपाध्याय हो गये। उनके शिष्य आचार्य जयसिंह सूरि ने अपने नौ विद्वान् शिष्यों को चन्द्रावती नगरी में महावीर स्वामी के मन्दिर में एक ही समय में आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। नौ आचार्यों में शान्तिसूरि भी एक थे उन्होंने पिप्पलिया गच्छ की स्थापना की। देवेन्द्रसूरि नाम के आचार्य से संगम खेडिया नामक गच्छ चला। अन्य शिष्यों में चन्द्रप्रभसूरि, शीलगुणसूरि, पद्मदेवसूरि एवं भद्रेश्वरसूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी थे। इन चार आचार्यों से वि० सं० ११४९ में पूनमिया गच्छ की चार शाखाएँ निकलीं। मुनिचन्द्रसूरि से देवसूरि की परम्परा चली। श्री बुद्धिसागरसूरि से श्रीमालीगच्छ निकला तथा श्री मलयचन्द्रसूरि से आशापल्ली गच्छ चला।

श्री जयचन्द्रसूरि के शिष्य विजयचन्द्रोपाध्याय ने अपने मामा शीलगुणसूरि के साथ पूनमिया गच्छ स्वीकार किया। उन्होंने आगम ग्रन्थों का सविशेष अध्ययन किया। आ० जयचन्द्रसूरि इन्हें गच्छाचार्य के पद पर अधिष्ठित करना चाहते थे। उस समय उनके गच्छ में मालारोपण आदि अनेक शास्त्र विरुद्ध परम्पराएँ प्रचलित थीं। उन्हें शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्तियाँ अच्छी नहीं लगती थीं, अतः उन्होंने आचार्य पद लेने से इनकार कर दिया। तब उन्हें उपाध्याय पद से विभूषित किया गया। मुनिचन्द्रसूरि एवं विजयचन्द्रोपाध्याय एक ही गुरु के शिष्य थे।

विजयचन्द्रोपाध्याय के शिष्य यशचन्द्रगणि थे। मुनिचन्द्रसूरि के सांभोगिक रामदेव सूरि ने पावागढ़ के समीप मन्दारपुर में भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर में उन्हें श्रीचन्द्र आदि श्रावकों तथा बडोदरा, खंभात आदि के संघों के समक्ष वि० सं० १२०२ में आचार्य पद पर अधिष्ठित किया और उनका नाम जयसिंह सूरि रखा।

वि० सं० ११६९ विजयचन्द्रोपाध्याय ने विधिपक्ष की स्थापना की।

विजयचन्द्रोपाध्याय का जन्म सं० ११३९, दीक्षा सं० ११४२, स्वर्गवास १२२६ में हुआ था।

श्री जयसिंहसूरि का जन्म ११७९ में, दीक्षा ११९७ में, आचार्यपद १२०२ मैं, स्वर्गवास १२५८ में।

प्रथम शतपदी के कर्ता धर्मघोषसूरि का जन्म १२०८ में, दीक्षा १२१६ में, आचार्यपद १२३४ में, स्वर्गवास १२६८ में हुआ।

इस प्रकार शतपदिका प्रश्नोत्तर पद्धति ग्रन्थ धार्मिक सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्व का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org